**विभाग - राजनीतिक विज्ञान.**

**प्रश्न पत्र : 3 - भारत में राष्ट्रवाद.**

**<u>विषय-</u> भारत में संविधानवाद का आर्विभाव**

**प्रथमवर्ष : सेमेस्टर- 2**

**लेखक- प्रकाश कुमार पटेल और आलोक कुमार सिंह**

**(शोधार्थी राजनीति विज्ञानं विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय)**

<u>अध्याय- : "राष्ट्रवादी राजनीति और इसके सामाजिक आधार में विस्तार</u>

## भारत में संविधानवाद का आर्विभाव

विश्व के सभी देशों में किसी न किसी प्रकार की शासन-पद्धति पाई जाती है, जिसके माध्यम से वहां की शासन व्यवस्था संचालित की जाती है. विश्व में कहीं राजशाही, तो कहीं तानाशाही, तो कहीं-कहीं लोकशाही पाई जाती है, और ये सभी शासन-प्रणालियाँ किसी न किसी रूप में जनता के विश्वास पर आधारित होती हैं. जहाँ लोकतंत्र में सरकारें जनता के द्वारा चुनी जाती हैं, तथा उनका कार्यकाल जनता के विश्वास पर आधारित होता है. अगर सरकारें जनता की भावनाओं के अनुसार व्यवहार नहीं करती तो लोकतंत्र में होने वाले आवधिक चुनावों में जनता उनको ख़ारिज कर देती हैं, और उनकी जगह किसी अन्य सरकार को चुन लेती है. यहाँ तक कि राजशाही और तानाशाही व्यवस्था में पाई जाने वाली सरकारें भी अपनी वैधता के लिए जनता का विश्वास अर्जित करने का प्रयत्न करती हैं. अगर राजशाही या तानाशाही व्यवस्था जनता की भावनाओं की लम्बे समय तक अवहेलना करती हैं तो जनता अंततः उनके खिलाफ विद्रोह कर उनका तख्ता पलट देती है. शासन या सरकार के वैधता और स्थिरता का उच्च स्तर केवल लोकतंत्र में ही पाया जाता है क्योंकि लोकतंत्र में सरकारों का अस्तित्व जनता के विश्वास पर आधारित होता है. लोकतंत्र एक शासन पद्धति के साथ-साथ एक मूल्यात्मक पद्धति भी है, जो स्वतंत्रता, समानता, न्याय और बंधुता जैसे मूल्यों पर आधारित होता है. लोकतंत्र में शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार चलाया जाता है, जो विधि के शासन पर आधारित होता है. विधि के शासन का तात्पर्य वैसे शासन से है, जो संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार चलाया जाता है. और जिस देश की शासन प्रणाली संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप चलाई जाती हो, वहां संविधानवाद की स्थापना होती है. लेकिन प्रश्न यह उठता है कि विश्व का प्रत्येक देश, चाहे वह किसी भी शासन प्रक्रिया यथा- लोकतंत्र, तानाशाही या राजशाही को अपनाता है, वहां किसी न किसी प्रकार के लिखित या अलिखित संविधान का स्थायित्व पाया ही जाता है. लेकिन यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक देश में पाए जाने वाले संविधान की भावना जनता की इच्छाओं के अनुरूप हो. अतः जनता या उसके प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित वह संविधान जो जनता की इच्छाओं और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ विधि के शासन पर आधृत हो, के प्रावधानों के अनुसार जब किसी देश का शासन चलाया जाता है, तो उस देश में संविधानवाद की सही मामलों में स्थापना होती है.

संविधानवाद की अवधारणा विश्व में कोई नयी परिघटना नहीं है, बल्कि इसकी जड़ें हम प्राचीन यूनान या भारत में देख सकते हैं. प्राचीन यूनान के महान राजनीतिक वैज्ञानिक अरस्तु ने संविधानवाद की दिशा में पहला प्रयत्न करते हुए घोषित किया कि किसी देश में मात्र संविधान का होना काफी नहीं हैं, क्योंकि संविधान तो प्रत्येक देश में पाए जाते हैं. उन्होंने तत्कालीन विश्व में प्रचलित 158 संविधानों की तुलना कर यह प्रतिपादित किया कि एक लोकतान्त्रिक देश में विधि को भी शासित होना चाहिए. विधि के शासित होने से उनका तात्पर्य यह था कि विधि का निर्माण जनता की भावनाओं के अनुसार होना चाहिए तथा उसमें बदलाव भी जनता की आवश्यकता के अनुरूप होना चाहिए न कि शासकों की इच्छाओं और हितों के अनुसार. आधुनिक विश्व में संविधानवाद की शुरुआत तब से मानी जाती है जब से सर्वप्रथम व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान की गयी. ब्रिटिश प्रोफ़ेसर बर्नार्ड स्च्वार्ट के अनुसार जब सर्वप्रथम मैग्ना-कार्टा के माध्यम से आम जनता को राज्य के खिलाफ व्यक्तिगत नागरिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए वह संविधानवाद के विकास की शुरुआत थी. आगे चलकर ए.वी.डायसी ने 19वीं शताब्दी में संविधानवाद की अवधारणा को विधि के शासन से जोड़ दिया तथा सीमित सरकार की संकल्पना प्रस्तुत की. डायसी के विधि के शासन का तात्पर्य कानून सबके लिए समान है, और कोई भी कानून से ऊपर नहीं है तथा अच्छी सरकार वह है जो विधि के अनुसार संचालित होती है.

भारत मे संविधानवाद की शुरुआत 19 वीं शताब्दी में उपनिवेशिक विरोधी संघर्ष के साथ आरंभ हुई | भारत में संविधानवाद का विकास लगभग एक शताब्दी का विकास है | इसकी शुरुआत ब्रिटिश सरकार द्वारा 1858 के अधिनियम से शुरू होती है और संविधान सभा के गठन तक चलती है | भारत में संवैधानिक विकास और राष्ट्रीय आंदोलन दोनों साथ-साथ चले इसलिए दोनों का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है | राष्ट्रीय आंदोलन के द्वारा स्वतंत्र संवैधानिक स्थिति पाने का प्रयास किया गया | यह संवैधानिक स्थिति लगातार बदलती रही | समय-समय पर ब्रिटिश सरकार भारत के शासन में सुधार करती रही और संसदीय तथा प्रतिनिधि संस्थाओं का विकास करती रही | इसी संदर्भ में हम इसका अध्ययन करेंगे |

## संविधानवाद क्या है ?

संविधानवाद एक जटिल संकल्पना है | इसका तात्पर्य एक ऐसी सरकार से है, जिसकी शक्ति विधि द्वारा नियमित एवं आवश्यकता पड़ने पर सीमित की जाती है. इसके अंतर्गत सरकार या शासन की शक्ति और उस देश के नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं के मध्य एक उचित सामंजस्य बैठाया जाता है, जिससे सरकार और नागरिक दोनों अपने दायित्वों का उचित निर्वहन कर सकें. संविधानवाद से पहले संविधान क्या है इसको समझना जरूरी है | साधारण शब्दों में संविधान ऐसे नियमों, कानूनों का संकलन है, जिसके आधार पर किसी देश का शासन चलाया जाता है | इस रूप में संविधान किसी देश की शासन प्रणाली की दिशा व दशा को तय करता है. यह सरकार को नियंत्रित करने के साथ-साथ उसे विधि के अनुसार बिना किसी भेदभाव के आचरण करने का निर्देश देता है. यह जहाँ एक तरफ राज्य के अधिकारवादी तंत्र के खिलाफ नागरिकों को अधिकार और स्वतंत्रता की गारंटी प्रदान करता है, वहीं दूसरी तरफ यह नागरिकों को भी राज्य के प्रति उनके कर्तव्यों का बोध कराता है. इसप्रकार एक संवैधानिक व्यवस्था में राज्य और सरकार दोनों संविधान के अनुसार कार्य करने के लिए बंधे होते हैं | इस तरह साधारण शब्दों में संविधान शक्ति के इस्तेमाल को सीमित करता है | यह वह मूलभूत नियम प्रदान करता है जो राज्य को निरंकुश होने से बचाता है |[1] संविधानवाद की संकल्पना संविधान की इसी सार्थकता पर आधारित है |

इस तरह संविधान किसी भी राज्य के संचालन का माध्यम होता है जिसके आधार पर शासन चलाया जाता है | किसी भी देश का संविधान वहाँ की राजनीतिक प्रक्रिया के लिए वैध ढाँचा प्रस्तुत करता है | सांविधानिक शासन ऐसा शासन है जिसमे निरंकुश शक्ति के प्रयोग की कोई गुंजाइश न हो | दूसरी ओर संविधानवाद का विचार व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए राज्य की शक्ति पर अंकुश रखने की मांग करता है | यह उदारवादी संविधानवाद के संकल्पना पर आधारित है जिसे हम संविधानवाद की मुख्य धारा मान सकते है | सविधानवाद की आधुनिक अवधारणा मानकीय अर्थ से निकलती है | यह आदेश देती है कि सरकार संविधान का पालन करे | संविधानवाद की इस आधुनिक अवधारणा के सबसे बड़े प्रवक्ता जॉन लॉक थे | जिन्होंने सर्वप्रथम जनता के अधिकारों और स्वतंत्रता को सर्वोच्च महत्व देते हुए एक सीमित राज्य और एक नियंत्रित सरकार की अवधारणा प्रस्तुत की. जॉन लॉक ने राज्य और सरकार के अस्तित्व को एक अनुबंध का परिणाम माना. उस अनुबंध के

[1] Rajeev Bhargava , 2008, outline of a political theory of the Indian constitution ,in Rajeev Bhargava ed , Ethics and politics of the Indian constituution , New Delhi : oxford university press, p. 14

प्रावधानों को ही हम संवैधानिक नियम मान सकते हैं. संविधान का लिखित होना जरूरी नहीं है , यह लिखित या अलिखित प्रथाओं पर आधारित हो सकता है. इंग्लैंड के पास लिखित संविधान नहीं है, बल्कि वह वर्षों से चले आ रहे लोकतान्त्रिक प्रथाओं का परिणाम है. मुख्य विचार यह है कि संविधान का प्रारूप ऐसा होना चाहिए कि यह जन-भावनाओं को प्रतिबिंबित करता हुआ प्रतीत होना चाहिए. [2]

प्रसिद्ध न्यायविद ए.वी. डायसी के अनुसार संविधानवाद की संकल्पना विधि के शासन की अवधारणा से बहुत नजदीकी से जुडी हुई है. उन्होंने संविधानवाद के मुख्य तीन कारकों की तरफ संकेत किया है.-[3]

पहला- सरकार, उसके अधिकारीवर्ग और उसके अभिकर्ता विधि के अनुसार उत्तरदायी हों.

दूसरा,- संवैधानिक नियमों को साफ, प्रकाशित, स्थिर, निष्पक्ष और जनता के जीवन और संपत्ति जैसे मौलिक अधिकारों को रक्षित करने वाला होना चाहिए.

तीसरा,- कानून बनाने, उसे लागू करने तथा उसे अधिनिर्णित करने की प्रक्रिया सुलभ, निष्पक्ष और प्रभावी होनी चाहिए.

ऐतिहासिक रूप से संविधानवाद न केवल विदेशी वरन देशी शासकों की मनमानी को रोकने का औज़ार रहा है | उत्तरी अमेरिका के उपनिवेशों में देशी सरकार से असंतुष्ट होने पर पहले जनता ने संसद समेत ब्रिटिश राजा द्वारा नियुक्त उपनिवेशिक गवर्नरों की शक्तियों का और बाद में ब्रिटिश संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के अंतर्गत उनके द्वारा टेक्स लगाने की शक्ति को सीमित करने का प्रयास किया | अपनी प्रार्थना और विरोध को बहरे कानों में न पड़ते देख कर जनता ने विद्रोह कर दिया | इस प्रकार संविधानवाद , उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष का अभिन्न अंग बन गया |[4]

मुख्य रूप से संविधानवाद से तात्पर्य सीमित सरकार से है | संविधानवाद के अनुसार वह शासन सबसे उत्तम होता है, जिसके अंतर्गत सरकार लोगों के जीवन व स्वतंत्रता में न्यूनतम तथा संविधानसम्मत हस्तक्षेप करती है. इसका दूसरा पक्ष है कि संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदत्त अधिकार और स्वतंत्रताएं भी सरकार की शक्ति को सीमित करती हैं | भारत मे संविधानवाद की शुरुआत 19वीं शताब्दी के अंत में उपनिवेश विरोधी संघर्ष के रूप में हुई, जिसे संवैधानिक साधनों द्वारा पाने का प्रयास किया गया | 1857 का विद्रोह ने यह साबित कर दिया कि भारत मे ब्रिटिश शासन को बनाए रखने के लिए भारतीयो को कुछ प्रशासनिक और संवैधानिक अधिकार देना होगा जिसकी मांग वह लगातार कर रहे है | लेकिन यह भी ध्यान देने की बात है कि ये प्रशासनिक और संवैधानिक सुधार भारतीयो को सांत्वना देने तथा ब्रिटिश सरकार के शासन को मजबूती प्रदान करने के लिए किये जाते थे | इस तरह भारत में सवैधानिक सुधार की प्रक्रिया धीरे-धीरे आगे बढ़ी |

## प्रारम्भिक राष्ट्रीय आंदोलन और 1861 तथा 1892 का काउंसिल एक्ट :

[2] शिबानी किंकर चौबे, 2009, भारतीय संविधान रचना एवं कार्य, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट ,इंडिया पृष्ठ 1-2

[3] Dicey, Albert Venn. *The Law of the Constitution*. Oxford University Press, 2013.

[4] वही, पृष्ठ 3-4

1857 के विद्रोह ने भारत में ब्रिटिश सरकार की नींव को हिला कर रख दिया इसके परिणाम स्वरूप 1858 का भारत सरकार अधिनियम पास किया गया | जिसके द्वारा भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन समाप्त करके शासन की बागडोर पूरी तरह ब्रिटिश सम्राट के अधीन आ गया | इस अधिनियम द्वारा भारत के इतिहास का एक युग समाप्त हो गया और दूसरा युग आरंभ हो गया जिससे सम्राट का प्रत्यक्ष शासन स्थापित हुआ | इस अधिनियम के पूरक के रूप में 1 नवम्बर 1858 को महारानी विक्टोरिया ने घोषणा पत्र निकाला, जिसके द्वारा भारतीय राजाओं और लोगों में यह ऐलान किया गया कि भारत की सत्ता महारानी के हाथों में चली गयी है | भारत में सभी प्रादेशिक तथा अन्य राजस्व देसी रियासतों पर प्रभुसत्ता का अधिकार तथा कर वसूलने का अधिकार ब्रिटिश संसद में निहित कर दिया गया | इसमें भारत सचिव के नाम से एक पद का सृजन किया गया | 1858 की घोषणा में रानी ने भारत की प्रजा से साम्राज्य में दूसरे स्थानों की प्रजा के समान स्तर देने का वादा किया | अंग्रेजों ने 1861 में इंडियन काउंसिल एक्ट पारित करके , यह वादा पूरा करने का प्रयास किया | इसके अतिरिक्त सर्वप्रथम इसी एक्ट के द्वारा भारत में एक सीमित प्रतिनिधित्व की शुरुआत की गयी |[5]

1861 एक्ट के द्वारा भारत में संवैधानिक सुधार की दिशा में कुछ ठोस कदम उठाया गया | इस एक्ट के तहत भारतीयों में सहयोग की नीति की शुरुआत हुई | विधि निर्माण के कार्य में भारतीयों को भाग लेने का अधिकार दिया गया | इस अधिनियम ने कानून-निर्माण हेतु गवर्नर जनरल की परिषद के आकार को बढ़ा दिया | गवर्नर जनरल ने अपनी कार्यपालिका परिषद का दायरा बड़ा कर दिया | गवर्नर जरनल अपनी कार्यपालिका परिषद में अब 6 से 12 सदस्य और बढ़ा सकते थे और इनमें से कम से कम आधे गैर सरकारी व्यक्ति , भारतीय या ब्रिटिश , होने चाहिए थे | कानून-निर्मात्री समिति के रूप में इसे उपनिवेशिक विधान परिषद कहा जाने लगा | लेकिन यह शक्तिहीन थी | सरकार की पूर्व अनुमति के बिना यह न तो बजट पर बहस कर सकती थी, न किसी वित्तीय कदम पर , और न किसी और महत्वपूर्ण सरकारी विधेयक पर | यहां तक कि प्रशासन के कामों पर भी यह विचार नहीं कर सकती थी और न उनके बारे में कोई सवाल पूछ सकती थी | अतः इसकी तुलना किसी भी प्रकार की संसद से करना उचित नहीं है | इस विधान परिषद में भारतीय सदस्यों की भूमिका की बात करें तो यह बहुत सीमित थी | भारतीय सदस्यों की संख्या कम होती थी इसका अंदाजा इसी से लगा सकते हैं कि 1862 से 1892 तक 30 वर्षो में सिर्फ 45 भारतीयों को नामांकित किया गया |

इसके अलावा , विधान परिषद की सदस्यता देने के लिए सरकार की निगाह घूम फिरकर रजवाड़ों के शासकों या उनके कर्मचारियों , बड़े जमींदारों , बड़े व्यापारियों या अवकाश प्राप्त अधिकारियों पर ही पड़ती थी | [6] इसमें ज्यादातर सदस्य ऐसे होते थे , जो न भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करते थे और न उठती हुई राष्ट्रवादी लहर का | इसके द्वारा दिये गए अधिकार बहुत ही सीमित थे , विधानपरिषद में गैर सरकारी सदस्यों की संख्या बहुत कम थी इसलिए यह एक्ट लोगों की उम्मीदों पर खरा नहीं उतर सका | फिर नई मांगें उठने लगीं | 1885 में

[5] शिबानी शंकर चौबे, 2009, भारतीय संविधान रचना एवं कार्य नयी दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया पृष्ठ 7

[6] विपिन चन्द्र ,2011 , भारत का स्वतन्त्रता संग्राम : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविधालय पृष्ठ 89

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई इसके साथ ही भारतीयों ने अपनी मांगों को संस्थागत तरीके से मांगना शुरू कर दिया | जो पहले से कहीं ज्यादा प्रभावी साबित हुआ |

भारत मे राष्ट्रीय आंदोलन के शुरुआती दौर में उदारवादियों का बोलबाला था जो संवैधानिक सुधार में विश्वास रखते थे | इसके प्रमुख नेता डब्ल्यू ॰ सी . बनर्जी , सुरेन्द्र नाथ बनर्जी , दादा भाई नौरोजी आदि प्रमुख थे | भारत के उदारवादियो को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदान की गई धीमी और क्रमबद्ध प्रगति में आस्था थी उन्होंने अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वैधानिक आंदोलन का रास्ता अपनाया | यह उदारवादी नेतृत्व प्रतिनिधि संस्थाओं और चुनाव के सिद्धांत का समर्थन करता था | इसने जनता द्वारा निर्धारित विधायिका सभाओं और कार्यकारिणी पर विधायिका सभा के नियंत्रण की मांग की | [7]

इन मांगों के परिणाम स्वरूप ब्रिटिश सरकार को 1892 में इंडियन काउंसिल एक्ट के द्वारा कानून निर्माण की प्रक्रिया में कुछ और परिवर्तन करने पड़े | इसके द्वारा उपनिवेशिक तथा प्रांतीय विधान परिषदों मे अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी | इनमें से कुछ निर्वाचन , नगरपालिकाओ , जिला बोर्डो के जरिये अप्रत्यक्ष रूप से किया जा सकता था , लेकिन सरकारी बहुमत बरकरार रहा | सदस्यों को वार्षिक बजट पर बहस करने का अधिकार तो दिया गया , लेकिन उसपर मतदान करने या उस बारे मे कोई संशोधन दाखिल करने के अधिकार से उन्हें वंचित रखा गया | वे सवाल तो पूछ सकते थे , लेकिन उनका जवाब आने पर पूरक सवाल नहीं कर सकते थे | वस्तुतः राष्ट्रवादी 1892 के अधिनियम से पूर्णत असंतुष्ट थे | इसे वे अपनी मांगो के साथ मज़ाक मानते थे | परिषदे नपुंसक थीं और सरकार की सत्ता पूर्णतः निरंकुश | अब उनकी मांग यह थी कि विधान परिषदों में गैर - सरकारी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रहे और उन्हें बजट पर मतदान करने तथा इस तरह सार्वजनिक कोष पर नियंत्रण रखने का अधिकार हो | बहुत से नेताओं ने जैसे दादाभाई नरौजी , गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य तिलक ने कनाडा और आस्ट्रेलिया के स्वशासित उपनिवेशों की तर्ज पर भारत में स्वशासन की मांग रखनी शुरू कर दी | [8]

इसमें निर्वाचन की विधि अस्पष्ट तथा अपूर्ण थी | व्यस्थापिका सभाओं में केवल कुछ ही सदस्य निर्वाचित होते थे वो भी अप्रत्यक्ष रूप से | 1892 के भारतीय काउंसिल एक्ट में भारतीयों को संतोष नहीं हुआ और वे अधिक से अधिक भारतीय स्वशासन में भाग लेने की मांग कर रहे थे तथा सत्ता का विकेन्द्रीकरण चाहते थे | यह अधिनियम भी भारतीयों के मांगों पर खड़ा नहीं उतर सका |

इन दोनों एक्टों ने भारतीय राष्ट्रवादियों को निराश किया फलस्वरूप वैधानिक सुधार की लड़ाई और मजबूत हुई | इसमें भारतीयों ने वित्तीय क्षेत्र में और स्वायतता की मांग करने लगे जिसमें कर वसुलना शामिल था | वो शासन में और भागीदारी चाहते थे इसलिए उन्होंने ने नारा दिया ''प्रतिनिधित्व बिना कर नहीं'' |

---

[7] ए आर देसाई 2012 ,भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि ,नयी दिल्ली : मेकमिलन प्रेस, पृष्ठ 256-260

[8] विपिन चन्द्र ,2011 , भारत का स्वतंत्रता संग्राम : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पृष्ठ ९१

# उग्र राष्ट्रवादियों का उदय और 1909 का मार्ले मिंटो अधिनियम

20वीं सदी के प्रथम दशक मे क्रांतिकारी और आतंकवादी आंदोलन हुए | उदारवादियों के कार्यक्रम और कार्य नीति की असफलताओं से हुए मोह-भंग, यूरोप के देशों के क्रांतिकारी आंदोलन तथा रूसी शून्यवादियों एवं अन्य यूरोपियन गुप्त दलों द्वारा अपनाए गए षडयंत्रकारी आतंकवादी तरीकों के अध्ययन ने कुछ भारतीयों को भारत में भी आतंकवादी संगठन और कार्यप्रणाली की प्रेरणा दी |[9] एक और जहां उदारवादी अनुनय विनय एवं क्रमिक संवैधानिक सुधारों द्वारा अपने मांगों को पूरा करना चाहते थे, वहीं दूसरी तरफ उग्रवादी विचार वाले लोग स्वदेशी एवं बहिष्कार

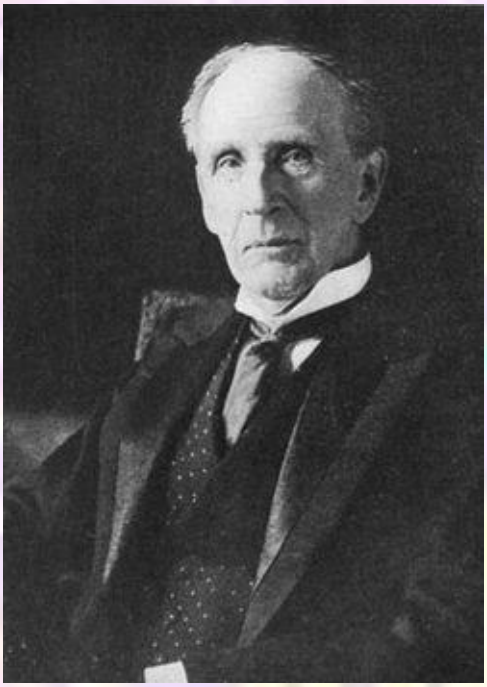

लॉर्ड मार्ले

स्रोत : http://www.born-today.com/toady

आंदोलनों द्वारा अपनी मांगों को पूरा करवाते थे | इसके प्रमुख नेता लाला लाजपत राय , बाल गंगाधर तिलक एवम विपिन चन्द्रपाल थे | लाला लाजपत राय ,बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पल को लाल-बाल-पाल के नाम से जाना जाता है | इन नेताओं ने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ कड़ा रुख अख़्तियार किया तथा अनुनय-विनय की नीति की जगह आन्दोलनों और विरोध के रास्तें को अपनाया | भारत में 20वीं सदी का प्रारम्भ उग्रवादी आंदोलन के उदय के साथ जुड़ा हुआ है | नई सदीं के साथ जन्में इस आंदोलन से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को बहुत बल मिला | इस दौरान लॉर्ड कर्ज़न द्वारा 1905 में बंगाल का विभाजन किया गया | इससे भारत मे विरोध की लहर

[9] ए आर देसाई 2012 ,भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि ,नयी दिल्ली :मेकमिलन प्रेस, पृष्ठ 272-273

उठ गयी | जिस दिन विभाजन हुआ उस दिन पूरे बंगाल मे शोक दिवस के रूप मे मनाया गया | इसके विरोध मे स्वदेशी आंदोलन व बहिष्कार आंदोलन चलाया गया | जिसमे स्वदेशी कपड़ो के इस्तेमाल पर ज़ोर दिया गया तथा विदेशी कपड़ो कि होली जलायी गयी | गरंपंथी नेता विपिंचन्द्र पल , बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले और अरविन्द घोष ने अपने भाषणो से जनता को प्रभावित किया | 1906 मे राष्ट्रीय काँग्रेस ने अपने कलकत्ता अधिवेशन मे राष्ट्रीय आंदोलन की दिशा मे एक सही कदम उठाया | दादाभाई नरौजी ने अपने भाषण मे कहाँ कि भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस का उदेश्य ब्रिटेन या उसके उपनिवेशों की तरह भारत मे भी अपनी सरकार का गठन करना है - अर्थात स्वराज की स्थापना | [10]

लॉर्ड मिंटो

स्रोत : http://www.indianetzone.com/42/lord minto

1905 के बाद बंगाल मे स्वदेशी आंदोलन पर उग्रवादियों की पकड़ मजबूत हो गई | गरमपंथी राष्ट्रवादियों ने जनता के सामने अनेक विचार , योजना और तरीके रखे | व्यापक जनआंदोलन के जरीये राजनीतिक स्वाधीनता हासिल करने का लक्ष्य रखा गया | यह आंदोलन काफ़ी लोकप्रिय और सफल रहा | इस आंदोलन के चलते विशाल जनसभाओं और प्रदर्शनों की बाढ़ आ गयी | बड़े-बड़े शहरों से लेकर जिलों , कस्बो, तालुको, गाँवों में भी जनसभाओं के आयोजन से जनता मे राजनीतिक चेतना आयी | स्वदेशी आंदोलन ने आत्म निर्भरता , 'आत्मशक्ति ' का नारा

[10] **विपिन चन्द्र , 2011, भारत का स्वतंत्रता संग्राम , हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली** विश्वविधालय पृष्ठ 100-104

दिया , आंदोलनकारी नेताओं का मानना था कि सरकार के खिलाफ संघर्ष चलाने के लिए जनता मे स्वावलंबन की भावना जरूरी है | [11]

1905 का बंगाल विभाजन भारत मे फूट डालो राज करो की नीति से प्रेरित था | इसका मुख्य उदेश्य भारत मे हिन्दु और मुस्लिम दोनों मे फूट डालना था | जिसमे वो कुछ हद तक सफल भी रहे और इसी कारण इस आंदोलन मे मुसलमानों ने पूरी तरह भाग नहीं लिया | ब्रिटिश सरकार इस आंदोलन के खतरे को भांप गयी थी और इसे निर्दयता पूर्वक दबाना शुरू कर दिया और अंततः इसमें कामयाब भी रही | लेकिन यह संघर्ष भावी राष्ट्रीय आंदोलन का नींव बना | स्वदेशी आंदोलन उपनिवेशवाद के खिलाफ सशक्त आंदोलन था , जो भावी संघर्ष का बीज बोकर ही खत्म हुआ | लेकिन दूसरी तरफ मुसलमानों को अपने हितों की लगातार चिंता हो रही थी अतः 1 अक्टूबर 1906 को मुसलमानों का एक प्रतिनिधि मण्डल आगा खाँ के नेतृत्व मे लॉर्ड मिंटो से मिलने गया और मुसलमानों के पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की | लॉर्ड मिंटो ने इसके लिए तुरंत गृह सरकार को सिफारिश कर दिया | इसके बाद आगा खाँ ने 30 दिसंबर 1906 को ढाका मे मुस्लिम लीग की स्थापना की | 1909 मे इंग्लैंड में सत्ता परिवर्तन और राजनीतिक शक्ति लिबरल पार्टी के हाथों मे आ गयी | इसने भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए बिल पास किया, जिसे **मार्ले -मिंटो सुधार अधिनियम** कहा गया | यह अधिनियम भारत के संवैधानिक विकास मे अगला कदम था | इस अधिनियम की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ थी : पहली,- भारत मे पहली बार प्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की गयी, जिसके तहत कॉग्रेस का उदारवादी गुट चुनाव लड़कर विधानसभाओं मे स्थान पा सका और दूसरा सांप्रदायिक आधार पर निर्वाचन पद्धति की शुरुआत , जिसके द्वारा मुस्लिम लीग को संतुष्ट किया गया | यहीं से भारत के विभाजन की नीव पड़ी | इस एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की विधान परिषद के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 16 से 60 कर दी गयी | उत्तर प्रदेश की विधान परिषद में भी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई | लेकिन केन्द्रीय परिषद मे अभी भी सरकारी सदस्यों की संख्या ज्यादा रखी गयी थी ताकि कानून बनाने में कोई कठिनाई न हो | इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता था कि केन्द्रीय परिषद के 69 सदस्यों मे 37 सरकारी सदस्य थे | इसमे केवल 27 सदस्य ही चुने जाते थे , जो भी 27 सदस्य चुने जाते थे , उनमें 5 मुसलमानों द्वारा , 6 हिन्दू जमींदारों द्वारा , 1 मुस्लिम जमींदारों द्वारा और 1 बम्बई के चेम्बर ऑफ कॉमर्स द्वारा चुने जाते थे , तथा शेष 13 सदस्य प्रांतीय विधान परिषदों द्वारा चुने जाते थे |

1909 के एक्ट के अनुसार जो मताधिकार दिया गया था वह अत्यंत सीमित था | वह अनेक प्रकार के भेदभावों पर आधारीत था | उदाहरणस्वरूप , केन्द्रीय विधान परिषद के चुनावों के लिए जमींदारों के क्षेत्रों मे केवल उन जमींदारों को मत देने का अधिकार था जिनकी आमदनी बहुत ज्यादा थी |

इसी प्रकार मुसलमानों में भी मताधिकार की योग्यता प्रत्येक प्रांत में अलग - अलग थी | इसमें भी उन्हीं मुसलमानों को मत देने का अधिकार था जिनकी आय ज्यादा थी, जो अंग्रेज़ो को ज्यादा भूमि कर देते थे |

इस अधिनियम के द्वारा भारत मे सांप्रदायिक चुनाव पद्धति की शुरुआत की गयी जिसमे मुसलमानों को अपने अलग प्रतिनिधि चुनने का अधिकार प्रदान किया गया | मुसलमान मतदाता केवल मुस्लिम उम्मीदवार को ही वोट दे सकते थे इससे मुसलमानों मे हिन्दुओ से अलग होने की भावना बढ़ी क्योंकि चुनाव मे सफल होने के लिए उन्हे

[11] वही ,पृष्ठ 105

हिन्दुओं के मतों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी | इस तरह जो उम्मीदवार चुने जाते थे उनसे आशा की जाती थी कि वो अपने संप्रदाय की हितों की रक्षा करेंगे | इसके अतिरिक्त इस अधिनियम द्वारा सदस्यों को पूरक सवाल पूछने का अधिकार दे दिया गया लेकिन केवल उसी सदस्य को जो पहले सवाल पूछा हो | विधानपरिषद के सदस्यों को बजट पर बहस करने और प्रस्ताव पेश करने का अधिकार दिया गया | विधान परिषदों को सार्वजनिक महत्व के विषयो पर प्रस्ताव पास करने , उनपर बहस करने और मतदान करने का अधिकार था | ये सारे अधिकार कुछ विशेष नियमो के अनुसार ही प्रयोग किए जा सकते थे | विधान परिषद का प्रधान सार्वजनिक हित का बहाना लेकर किसी भी प्रस्ताव की मनाही कर सकता था | सरकार इन प्रस्तावों से बंधी हुई नहीं थी यह सरकार के इच्छा पर निर्भर था कि इन प्रस्तावों को माने या न माने | इन सब का परिणाम यह निकला कि सदस्यों के पास सरकार के निर्णयों को प्रभावित करने की कोई वास्तविक शक्ति नहीं रही | इसके अतिरिक्त बजट का काफी भाग ऐसा रखा जाता था जिसपर सदस्य मतदान नहीं कर सकते थे केवल बहस कर सकते थे | सरकार उस बिषय पर मनमानी कर सकती थी |

1909 का इंडियन काउंसिल एक्ट भारत मे इंग्लैंड के संवैधानिक प्रयोगों मे सबसे कम टिकाऊ सिद्ध हुआ | नौ वर्ष के उपरांत ही 1918 मे मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट ने इसे पूर्णतः बदलकर रख दिया | नरमदलवालों को एकत्र करने मे और राजनितिक रूप से सक्रिय हिंदुओं और मुसलमानों को एक दूसरे से अलग रखने मे इसकी सफलता शीघ्र ही प्रकट हो गयी | [12]

अपनी तमाम कमियों के बावजूद 1909 के मार्ले-मिंटो अधिनियम ने भारत में संवैधानिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. कहाँ जाता है कि एक अच्छे कानून के साथ-साथ एक बुरा कानून भी जनता को जागरूक करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है.क्योंकि बुरे कानून के दुष्प्रभावों से जनता को अच्छे कानूनों का महत्व मालूम पड़ता है. 1909 के कानून के द्वारा जनता को धर्म के विभाजनकारी स्वरुप का पता चला जिससे बाद में चलकर बंधुता जैसे मूल्य को स्थापित करने का प्रयास और जोरदार तरीके से किया गया तथा स्वतंत्र भारत में धार्मिक आधार पर किसी भी प्रकार के प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया गया |

## 1919 का मोंटेग्यू -चेम्सफोर्ड अधिनियम

प्रथम विश्व युद्ध के समय भारतीयों ने फासिस्ट शक्तियों के खिलाफ मित्र राष्ट्रों का बढ़-चढ़ कर साथ इस अपेक्षा के साथ दिया था कि युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार उनकी स्वायत्तता सम्बन्धी समस्यायों के समाधान के तरफ ध्यान देगी और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास के साथ उन्हें शासन और प्रशासन की संस्थाओं में उचित व बृहत् भागीदारी प्रदान करेगी. युद्ध के पूर्व संध्या पर ब्रिटिश शासन ने भी कुछ ऐसे ही संकेत दिए थे कि युद्ध के बाद भारतीयों के स्वायत्तता सम्बन्धी उचित मांगों पर विचार किया जायेगा. लेकिन युद्ध के बाद सरकार ने 1919 का मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार अधिनियम लाते हुए भारतीयों के उम्मीदों पर पानी फेर दिया. जहाँ एक तरफ इस अधिनियम के तहत पृथक निर्वाचन के प्रावधान को मुस्लिमों के साथ-साथ अन्य समुदायों तक बढ़ा दिया गया वही

[12] सुमित सरकार, 2007, आधुनिक भारत, नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन ,पृष्ठ 161

प्रान्तों में दोहरी शासन की व्यवस्था करते हुए एक उत्तरदायी प्रतिनिधित्व के उदय की संभावना को लगभग समाप्त करते हुए शक्ति और उत्तरदायित्व के बीच एक खाई खोद दी गयी. इसके तहत एक तरफ जहाँ गवर्नर जनरल था, जो उत्तरदायित्व के बगैर सभी शक्तियों को धारण करता था, वही दूसरी तरफ निर्वाचित जन-प्रतिनिधि थे जिनपर उत्तरदायित्व तो पुरा था लेकिन निर्णय लेने के लिए उनके पास कोई शक्ति नहीं थी.

इस अधिनियम के पास होने के बहुत सारे कारण थे | इसके पहले जो मार्ले मिंटो सुधार हुए वे त्रुटिपूर्ण , अपर्याप्त तथा भारतीयों की समस्याओं का समाधान करने मे असमर्थ थे | एनी बेसेंट तथा तिलक ने होम रूल आंदोलन चलाया जिसका उदेश्य भारत मे स्वशासन स्थापित करना था | इस आंदोलन ने अंग्रेज़ो पर काफी प्रभाव डाला | प्रथम विश्वयुद्ध के समय अंग्रेज़ो ने भारतीय सहयोग प्राप्त करने के लिए अनेक घोषणाएँ की | परन्तु युद्ध के बाद उक्त भारतीयो को जब अपनी आशाएँ पूरी होती दिखाई न दी तो उनमे असंतोष बढ़ा | दूसरी तरफ 1916 के लखनऊ सम्मेलन मे कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग एक हो गये थे | इसमे काँग्रेस ने लीग के पृथक प्रतिनिधित्व को स्वीकार कर लिया और इसके बदले मे कॉग्रेस की स्वराज कि मांग का लीग ने समर्थन किया | इन सब घटनाओ के परिणामस्वरूप 1919 का मोंटेग्यू - चेम्सफोर्ड अधिनियम पारित किया | 1919 के अधिनियम द्वारा भारत मे आंशिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को अपनाया गया | इस अधिनियम की जन्मदाता भारत सचिव मोंटेग्यू तथा भारतीय गवर्नर जनरल चेम्सफोर्ड थे | अतः इसे मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम कहा जाता है |

इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रांतो मे दोहरा शासन स्थापित किया गया | चूंकि भारत मे उत्तरदायी शासन की मांग बहुत जोरों से हो रही थी , इसलिए जनता को संतुष्ट करने के लिए कुछ सुधार किए गए | इस शासन पद्धति के अनुसार प्रांतीय विषयों को दो भागो मे बांटा गया हस्तांतरित तथा आरक्षित | न्याय , पुलिस, सिंचाई तथा नहरे , भूराजस्व शासन , अकाल मे सहायता , समाचारपत्रों पर नियंत्रण इत्यादि विषय जो देश मे शांति स्थापित करने और जन -कल्याण के लिए अधिक आवश्यक समझे गए , आरक्षित विषय रखे गए | इन विषयों पर पूर्ण नियंत्रण गवर्नर के हाथो मे था | जबकि स्थानीय स्वशासन , शिक्षा , कृषि , चिकित्सा इत्यादि विषय को हस्तांतरित विषय मे रखा गया था |

20 अगस्त को कॉमन हाउस मे मोंटेग्यु ने यह घोषणा की कि भारत मे ब्रिटिश नीति का सम्पूर्ण लक्ष्य ''स्वशासी संस्थाओ का क्रमशः विकास करना होगा ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अभिन्न अंग के रूप मे भारत मे क्रमशः उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो सके |'' निश्चय ही यह घोषणा उस पुरानी ब्रिटिश नीति से स्पष्ट अलग थी जो , अधिक से अधिक प्रतिनिधि सरकार की बात करती थी | उत्तरदायी सरकार लाने और भारतीयों के राजनीतिक समस्याओं का समाधान करने के लिए 1919 मे दोहरी शासन का अनोखा उपाय अपनाया गया , जिसके अंतर्गत प्रांतीय सरकारों के कतिपय प्रकार्य ( शिक्षा , स्वास्थ्य ,कृषि , स्थानीय निकाय ) मंत्रियो को सौप दिए गए जो विधायिका के प्रति उत्तरदायी थे , जबकि अन्य विषयो को आरक्षित रखा गया था | [13]

1919 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट ने केंद्र मे दो सदनो की एक प्रणाली स्थापित की जिनमे चुने हुए बहुमत तो थे किन्तु इनका मंत्रियो पर कोई नियंत्रण नहीं था | साथ ही वायसराय के पास वीटो का अधिकार था एवं प्रमाणपत्र की व्यवस्था थी जिनके द्वारा अस्वीकृत विधेयकों को भी लाया जा सकता था | इसमे प्रांतीय

[13] वही पृष्ठ 184

विधायिकाओं के प्रति उत्तरदायी मंत्रियो को केवल वही विभाग सौंपे जाते थे जिनका राजनीतिक महत्व और वित्तीय अधिकार नहीं थे | इस प्रकार बड़ी चालाकी से भारतीय राजनीतिज्ञों को संरक्षण के चूहादौड़ मे डाल दिया गया था जिससे संभवतः उनकी विश्वसनीयता भी कम होती थी | कानून और व्यवस्था अथवा वित्त जैसे अधिक महत्वपूर्ण विभागों का नियंत्रण ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ मे ही रहा | प्रांतों के गवर्नरों को भी वीटो एवं प्रमाणपत्र के अधिकार प्राप्त थे | मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट मे पृथक निर्वाचक मंडलो की व्यवस्था की सिद्धांत रुप मे आलोचना की गयी थी , लेकिन व्यवहार मे सांप्रदायिक प्रतिनिधि एवं आरक्षणों को न केवल रहने दिया बल्कि उनको पर्याप्त बढ़ा दिया गया |[14]

1909 के मार्ले मिंटो सुधार अधिनियम द्वारा भारतीय राजनीति मे सांप्रदायिकता का बीजारोपण किया गया था | लेकिन 1919 के मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम के द्वारा इसे न केवल मुसलमानों तक रखा गया बल्कि इसे अन्य संप्रदायों मे भी बढ़ा दिया गया | इसके अन्तर्गत मुसलमानों के साथ साथ ईसाइयो , सिखों को भी विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया | इसप्रकार इस अधिनियम द्वारा सांप्रदायिकता का विस्तार किया गया |

इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को अत्यधिक कानूनी एवं वित्तीय अधिकार दिए गये | भारत सरकार पूर्वतः अनुत्तरदायी बनी रही | गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी थे न की केन्द्रीय व्यवस्थापिका के प्रति | व्यवस्थापिका सभा उन्हे त्याग पत्र देने के लिए मजबूर नहीं कर सकती थी |मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार की प्रक्रिया निकट से देखने पर ज्ञात होता है कि इसमे कोई विशेष नवीनता नहीं थी , न ही यह दूरगामी थी [15] |

## 1919 के उपरान्त राष्ट्रीय आंदोलन तथा संवैधानिक विकास

अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद भी 1919 का भारत शासन अधिनियम भारतीयों को राजनीतिक रूप से जागरूक करने की दिशा में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाया तथा भविष्य में होने वाले संवैधानिक सुधारों की दिशा में एक रोडमैप प्रस्तुत किया. लोकतान्त्रिक संवैधानिक संस्थाओं और मूल्यों का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है, तथा इसका विकास शनैः-शनैः ही होता है. मात्र संविधानिक व लोकतान्त्रिक सुधार करने से ही सुधार की प्रक्रिया पूर्ण नही हो जाती बल्कि लोकतान्त्रिक व संविधानिक सुधार को समावेशित व प्रासंगिक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समाज में भी उसी के अनुरूप परिवर्तन हो. क्योकि लोकतान्त्रिक व संविधानिक सुधार तब तक कोई महत्व नही रखते जब तक कि समाज का स्वरुप लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित नही हो. अतः संविधानिक सुधारों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके अनुपात में समाज निर्माण हो. क्योकि अगर समाज लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित होगा तो फिर वह संविधानिक सुधारों को ग्रहण करने के प्रति ज्यादा तत्पर होगा. अतः किसी भी संविधानिक व लोकतान्त्रिक सुधार के लिए यह आवश्यक है कि उसकी मांग समाज से उठे और समाज स्वयं उसे अपनाने के लिए तैयार हो. भारत मे जो भी संवैधानिक विकास हुआ वह भारतीयो द्वारा अपनी मांगो के लिए

[14] वही पृष्ठ 186

[15] वही पृष्ठ 185

चलाये जाने वाले आंदोलनों का परिणाम था। अर्थात संविधानिक सुधारों की मांग खुद समाज से ही उठी थी. भारतीयों द्वारा अपनी वाजिब लोकतान्त्रिक मांगों के लिए लगातार आंदोलन करते रहे समय समय पर इन आन्दोलनों का स्वरूप बदलते रहा | इन्ही आंदोलनों के प्रतिक्रियास्वरूप ब्रिटिश सत्ता समय समय पर संवैधानिक सुधार लागू करती रही |

20वी सदी के दूसरे दशक का अंतिम वर्ष यानि 1920 भारतीय जनता के लिए निराशा और क्षोभ का वर्ष था | जनता उम्मीद लगाये बैठी थी कि प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेजी हुकूमत उनके लिए कुछ करेगी , लेकिन रौलेक्ट एक्ट , जलियाँवाला बाग कांड और पंजाब मे मार्शल लॉ ने उनकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया | गांधीजी और उनके जैसे तमाम लोग , जो यह उम्मीद लगाये बैठे थे कि जलियाँवाला बाग कांड और पंजाब मे उपद्रवो की निष्पक्ष जांच होगी , और ब्रिटिश सरकार तथा जनता इसकी एक स्वर से निंदा करेगी , सब निराश हो चले थे | 'हंटर कमेटी ' द्वारा इन घटनाओं की जाँच जिस तरह से की जा रही थी , उससे ये लोग काफी क्षुब्ध थे | [16]

1919 में जन आंदोलन का तेजी से विकास हुआ | राजनीतिक आंदोलन , हड़ताल आदि बढ़ रहे थे | राष्ट्रीय आंदोलन को पहली बार जनाधार मिल रहा था और लोगो मे राजनीतिक उद्वेग बढ़ रहा था | 1919 के अंत मे अमृतसर मे इंडियन नेशनल काँग्रेस का अधिवेशन हुआ | इसी बीच राष्ट्रीय नेता अपना अलग अलग मत व्यक्त कर रहे थे | जिसमे तिलक प्रतिसंवेदी सहयोग कि नीति का समर्थन कर रहे थे | सी आर दास का कहना था कि सुधार को अस्वीकार कर देना चाहिए | इसी बीच गांधीजी ने अपना दृष्टिकोण इन शब्दों मे प्रस्तुत किया : सुधार अधिनियम और तत्संबंधी वक्तव्य ब्रिटिश जनता के इस अभिप्राय के परिचायक है कि वह भारत के साथ न्याय करना चाहती है और अब इस संबंध मे कोई संदेह नहीं रहना चाहिए इसलिए हमारा कर्तव्य है कि सुधार की कटु आलोचना न कर हम उन्हे सफल बनाने का प्रयास करे |[17]

अमृतसर काँग्रेस के समझौतावादी प्रस्ताव मे कहा गया , सुधार अधिनियम अपर्याप्त, असंतोषप्रद और निराशाजनक है | कॉग्रेस का मत था कि ब्रिटिश पार्लियामेंट आत्मनिर्धारण के सिद्धांत के अनुसार भारत मे पूर्ण उत्तरदायी सरकार बनाने के लिए कदम उठाए | [18]

1919 के सुधार अधिनियम से भारतीयों के अपेक्षाओं की पूर्ति नही हो सकी. लेकिन यह अधिनियम उत्तरदायी प्रतिनिधित्व की तरफ एक कदम जरुर था. इस अधिनियम ने भारतीयों को और सार्थक संविधानिक सुधारों को प्राप्त करने की दिशा में प्रोत्साहित किया. लेकिन इस असंतोषप्रद सुधार अधिनियम , रौलेक्ट एक्ट, पंजाब मे फौजी शासन और सरकार की दमनकारी नीति के कारण राजनीतिक तनाव कायम हुआ | इसके उपरान्त गांधी के नेतृत्व मे असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। यह आंदोलन तब तक चलने वाला था , जब तक ब्रिटिश सरकार खिलाफत और

---

[16] **विपिन चन्द्र 2011, भारत का स्वतंत्रता संग्राम , हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली** विश्वविधालय पृष्ठ 161

[17] ए आर देसाई, 2012 ,भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि ,नयी दिल्ली :मेकमिलन प्रेस, पृष्ठ 277

[18] वही पृष्ठ 277

पंजाब संबंधी अपनी नीतिगत गलतियों को सुधार नहीं लेती और भारत मे स्वराज्य के संबंध मे कोई ठोस आश्वासन नही दे देती। कॉग्रेस के आह्वाहन पर लोगो ने आंदोलन मे जमकर भाग लिया |[19]

इस आंदोलन के दौरान महात्मा गाँधी ने पूरे देश का दौरा किया और लोगो से इसमे भाग लेने के लिए अपील किया | उन्होने लोगो को उपाधिया वापस करने , न्यायालयों, सरकारी समारोहों तथा सरकारी उत्सवों का बहिष्कार करने के लिए कहा | इसके जवाब मे ब्रिटिश हुकूमत ने कड़ा रुख अख़्तियार करते हुये आंदोलन के कई बड़े नेताओ को गिरफ्तार कर लीया | लेकिन सरकारी दमन के बावजूद भी यह आंदोलन बहुत तेजी के साथ पूरे देश मे फैल गया। इस आंदोलन का प्रभाव बढ़ ही रहा था तभी चौरा चौरी कांड हो गया जिसमे 22 पुलिसकर्मियों को जिंदा जला दिया गया, इस घटना की खबर सुनते ही गाँधी जी ने आंदोलन वापस लेने की घोषणा कर दिया |

इसी बीच सी आर दास और मोतीलाल नेहरू ने उपनिवेशिक सत्ता का विरोध जारी रखने के लिए एक नई रणनीति की वकालत की | इनलोगों ने सुझाव दिया की राष्ट्रवादी आंदोलनकारी विधान परिषदों का बहिष्कार बंद करे | इन परिषदों का सदस्य बनकर वे 'पाखंडी संसद' सदस्यों का पर्दाफाश करे | इसके लिए इन्होने स्वराज पार्टी का गठन किया | इसने घोषणा की कि विधान परिषद मे स्वदेशी सरकार की गठन की मांग उठायेगी और यदि ये मांगें नहीं मानी गयी, तो पार्टी के सारे निर्वाचित सदस्य विधान परिषद के भीतर एकजुट होकर परिषद की कार्यवाही मे बाधा डालेंगे और उसके काम काज को असम्भव बना देंगे | उनका कहना था कि वे उपनिवेशिक सत्ता को उखाड़ फेकने के लिए विधान परिषदों को बतौर हथियार इस्तेमाल करना चाहते थे [20] लेकिन धीरे-धीरे स्वराज पार्टी के अंदर मतभेद सामने आने लगे और इसका प्रभाव धीरे धीरे कम होने लगा |

1927 के उतरार्ध मे साम्राज्यवाद विरोधी जन उभार मे उफान के साफ लक्षण दिखाई पड़ने लगे | जैसा की 1919 मे रौलेक्ट एक्ट के चलते लोगो मे उत्तेजना फैली थी , इस बार भी ब्रिटिश सरकार के एक भेदभावपूर्ण निर्णय ने लोगों को उत्तेजित करने के लिए आग मे घी डालने का प्रयास किया | 8 नवम्बर 1927 को एक आयोग की घोषणा की गयी | इस आयोग के सभी सदस्य गोरे थे | इस आयोग का काम इस बात का सिफारिश करना था कि क्या भारत इस योग्य हो गया है कि यहा के लोगो को और अधिक संवैधानिक अधिकार दिये जाएँ और अगर दिये जाएँ तो उसका स्वरूप क्या हो? [21]

सारे भारत मे इसकी तत्काल और व्यापक प्रतिक्रीया हुई कि जिस आयोग को भारत का राजनीतिक भविष्य निश्चित करना हो , उसकी सदस्यता के लिए एक भी भारतीय को काबिल नहीं माना गया | यह भारत के लिए अपमानजनक बात थी कि इसमे कोई भारतीय नहीं था | 3 जनवरी 1928 को जैसे ही साइमन कमीशन के सदस्य बंबई उतरे, उसी दिन सभी प्रमुख नगरों तथा कस्बों में हड़ताल रही तथा लोगो ने सामूहिक प्रदर्शनों मे हिस्सा लिया

---

[19] वही पीपी 280

[20] **विपिन चन्द्र , 2011, भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली** विश्वविधालय पृष्ठ 216-217

[21] वही पृष्ठ 241

, काले झंडे दिखाये गए | साइमन जहां कही भी गया, सभी स्थानो पर विशाल जनसमूह ने काले झंडे दिखाकर उसका स्वागत किया | [22]

साइमन कमीशन विरोध प्रदर्शन

स्रोत :http://www.punjabmuseum.gov.in/artefact

साइमन कमीशन को नियुक्त करने वाले राज्य सचिव लॉर्ड बिरकेनहेड लगातार यह आरोप लगा रहे थे कि भारतीय लोग संवैधानिक सुधार के लिए एक ऐसा प्रस्ताव लाने मे असमर्थ है , जिसे सभी भारतीयों का व्यापक राजनीतिक समर्थन प्राप्त हो | इसी के जवाब मे एक योजना को अंतिम रूप देने के लिए फरवरी , मई और अगस्त 1928 मे सर्वदलीय अधिवेशन आयोजित किए गए | क्योकि इस रिपोर्ट के मुख्य लेखक मोतीलाल नेहरू थे इसलिए , इसे नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना गया | इसमे कहा गया था कि भारत सरकार को 'डोमिनियन स्टेट्स ' की हैसियत रखने वाली सरकार होनी चाहिए | इसमे सांप्रदायिक आधार पर अलग निर्वाचन की मांग को खारिज कर दिया गया था जिसके आधार पर इसके पूर्व संवैधानिक सुधार किए गए थे | इस रिपोर्ट मे वयस्कों के लिए मताधिकार , महिलाओ के लिए समान अधिकार, यूनियन बनाने की स्वतंत्रता और धर्म का हर प्रकार से पृथक्करण की भी बात की गयी | इसप्रकार नेहरु रिपोर्ट के माध्यम से भारतीयों ने सबसे पहले संविधान निर्माण की दिशा में एक पहल की और ब्रिटिश सरकार को एक सन्देश देने की कोशिस की गयी कि भारतीय भी अपने अनुकूल एक संविधानिक प्रावधानों का विकास कर सकते हैं. लेकिन जिन्ना ने इस रिपोर्ट को नहीं माना तथा इसके विरोध मे चौदह सूत्री योजना पेश की, जिसमे मूलतः नेहरू रिपोर्ट के बारे मे उन्होने ने अपनी आपत्तियाँ दुहराई थी | [23] नेहरू रिपोर्ट पहली बार भारतियों द्वारा संविधान बनाने की दिशा मे प्रथम प्रयास था जो की असफल रहा |

नेहरु रिपोर्ट तथा इसके बाद जिन्ना के नेतृत्व वाली मुस्लिम लीग द्वारा व्यक्त की गई आपत्तियों के मद्देनजर इस रिपोर्ट पर पूरी तरह से अखिल भारतीय सहमति नहीं कायम हो पाई. इसके बाद भारतीय राजनीति मे और उथल पुथल शुरू हुआ | इसी सब के बीच गांधी जी ने नमक कानून तोड़ कर अंग्रेज़ो को चुनौती दी | इसके साथ साथ सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाये गए | जब आंदोलन जोरों पर था तो ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समस्या को हल

[22] वही पृष्ठ 242

[23] वही पृष्ठ 244-45

करने के लिए लंदन मे एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया | लेकिन इस समेलन मे कॉग्रेस ने भाग नहीं लिया | यह सम्मेलन बिना किसी नतीजा के खत्म हो गया | इसके बाद दो और गोलमेज सम्मेलन बुलाये गए थे लेकिन वो भी किसी नतीजा के खत्म हो गए | तीनों सम्मेलनों के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया जिसके आधार पर 1935 का अधिनियम बनने वाला था | इसके बाद संवैधानिक सुधार के लिए 1935 का भारत सरकार अधिनियम पास किया गया |

## 1935 का भारत सरकार अधिनियम एवम भावी संविधान-निर्माण :

अगस्त 1935 मे गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के साथ अंततः वह लंबी और यंत्रणादायक प्रक्रिया समाप्त हुई जो आठ वर्ष पूर्व साइमन आयोग की नियुक्ति के साथ आरंभ हुई | 1932 के बाद इस संविधान के निर्माण मे भारतीयो की भागीदारी नगण्य रही थी | यह अधिनियम जब सामने आया तो भारतीय जनमत के सभी भागो ने आलोचना की | उनका का कहना था कि इसमे 1919 के प्रस्ताव से अधिक कुछ नहीं है | इस अधिनियम मे केवल संघीय स्तर पर प्रत्यक्ष चुनावों के स्थान पर अप्रत्यक्ष चुनावों का प्रावधान था | और सरकारी विवेकाधीन शक्तियों , आरक्षणों और रक्षक उपायों के तंत्र मे विस्तार करके उसे और भी कस दिया गया था | महत्वपूर्ण एवम प्रगतिशील कदम केवल प्रांतो मे उठाए गए थे जिनके लिए दोहरे शासन के स्थान पर , सैद्धांतिक रूप से सभी विभागों मे उत्तरदाई सरकार का प्रावधान रखा गया था | किन्तु प्रांतीय गवर्नरो के पास विवेकाधीन शक्तिया रहने दी गयी थी जो विधायिकाओ के अधिवेशान बुलाने , अधिनियमो पर स्वीकृति देने और कुछ विशिष्ट क्षेत्रों के प्रशासन से संबन्धित थी | [24]

इस अधिनियम मे गवर्नरों को अपना व्यक्तिगत विवेक प्रयुक्त करने का अधिकार दिया गया था जिसमे मंत्री सलाह तो दे सकते थे किन्तु अल्पसंख्यको के अधिकारो , असैनिक अधिकारियों के विशेषाधिकारों और ब्रिटिश व्यापारिक हितो के विरुद्ध भेदभाव की रोकथाम सबंधी मामलो मे उनके विचारो को अस्वीकार किया जा सकता था | अब भी पर्याप्त शक्तिशाली केन्द्र मे एक प्रकार की द्वेध शासन की बात थी | निर्वाचित मंत्रियो को हस्तांतरित किए जानेवाले विषय प्रांतो मे लगाए जानेवाले कई प्रकार के 'रक्षक उपायों' द्वारा सीमित कर दिये गए थे , और विदेश विभाग और प्रतिरक्षा पूर्ण रूप से वायसराय के हाथो मे रहने वाला था | [25]

इस अधिनियम का एक अत्यंत खतरनाक प्रावधान यह था कि सम्राट और भारतीय रियासतों के संबंधो का 'क्राउन रिप्रेजेंटेटिव' द्वारा नियमन। यह प्रतिनिधि तो व्यवहार मे स्वयं वायसराय ही होता था , किन्तु वह अपना कार्य उत्तरदायी मंत्रियो के माध्यम से न करके , सरकारी राजनीतिक विभागों , स्थानीय रेजिडेंटों और राजनीतिक अभिकर्ताओ के सलाहानुसार कार्य करता था | [26]

---

[24]सुमित सरकार, 2007, आधुनिक भारत, नयी दिल्ली राजकमल प्रकाशन ,पृष्ठ 357

[25] वही पृष्ठ 358

[26] वही, पृष्ठ 358

यह अधिनियम डोमिनियन स्टेट्स के संबंध मे पूरी तरह से मौन था , जिसका भारत मे लगातार मांग होती आ रही थी | इस अधिनियम मे केवल नियंत्रण शक्ति को भारत सचिव से गवर्नर जनरल को बहुत से कार्यो के साथ हस्तांतरण किया गया था | इसलिए इसको 'कागजी संघ' कहा गया | [27] क्योंकि वास्तविक रूप मे संघ बनाने की कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी | वास्तव मे संघीय ढाँचा इस प्रकार बनाया गया था कि कोई भी वास्तविक प्रगति असंभव हो जाए और अंग्रेज़ो द्वारा नियंत्रित शासन पद्धति मे भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के हस्तक्षेप के लिए कोई गुंजाइश न रहे |

भारतीय अधिनियम 1935 का विरोध सभी भारतीयो ने किया , काँग्रेस ने इसे पूरी तरह नामंज़ूर कर दिया | कोंग्रेस ने इसके पहले आजाद भारत के लिए संविधान बनाने की मांग की | उसकी मांग थी की एक संविधान सभा का गठन किया जाए, जिसके सदस्यों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर हो | [28]

इन सबके बावजूद 1935 का भारतीय अधिनियम महत्वपूर्ण है क्योंकि जब भारतीय संविधान का निर्माण हुआ तो उसमे बहुत से विषय ऐसे थे जो कि इस अधिनियम से लिए गए थे | इसमे सबसे महत्वपूर्ण विषय जो भारतीय संविधान मे इस अधिनियम से लिया गया था वह था संघवाद का सिद्धांत जो आज भी भारतीय संविधान का आभिन्न हिस्सा है | 1935 का भारतीय संविधान की छाप भावी भारतीय संविधान के निर्माण मे पूर्ण रूप से झलकता है | इस प्रकार इस अधिनियम ने भारतीय संवैधानिक महत्व के रूप मे अपनी अमिट छाप छोडी | फिर भी तत्कालीन 1935 के भारतीय संविधान भारतीयो के उम्मीदों पर खड़ा नहीं उतरा | अतः इसका विरोध किया गया | 1935 के भारतीय अधिनियम को काँग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने अस्वीकृत कर दिया | इसके उपरांत जब जब 1935 के अधिनियम के अंतर्गत चुनावों 1937 मे हुए तो दोनों पार्टियो ने उसमे भाग लिया | जिसमे काँग्रेस ने कुछ प्रांतो मे सरकार भी बनाई | इसके बाद काँग्रेस को मजबूती मिली तथा उसने यह मांगना शुरू कर दिया कि भारतीयो के नेतृत्व मे संविधान निर्माण करने के लिए संविधान सभा का गठन किया जाए | हालाकी ब्रिटिश सरकार को इसमे दिलचस्पी नहीं थी | वह केवल भारतीयो को कुछ संवैधानिक रियायत देने के लिए ही तैयार थी | इन्ही सभी के बीच 1942 मे ब्रिटिश सरकार ने भारत मे क्रिप्स मिशन भेजा |

भारत आते ही उन्होंने ने घोषणा की कि भारत मे ब्रिटिश नीति का उद्देश्य है , "जितनी जल्द संभव हो सके भारत मे स्वशासन की स्थापना", लेकिन अपने साथ जो मसौदा लाये थे वह निराशाजनक था | उसमे युद्ध समाप्त होने पर भारत को डोमिनियन राज्य ( स्वतंत्र उपनिवेश ) का दर्जा देने और एक ऐसी संविधान निर्मात्री परिषद का वादा था, जिसके कुछ सदस्य प्रांतीय विधायिकाओ द्वारा निर्वाचित होंगे और कुछ शासको द्वारा नामांकित होंगे | पूर्ण स्वाधीनता के स्थान पर डोमिनियन राज्य के दर्जे , संविधान सभा मे देसी रियासतों के लोगो के बजाय बजाय

[27] Shekhar Bandopadhyay,2004 , From Plassey to partition: A History of modern India ,New Delhi: Orient Longman pp .

[28] **विपिन चन्द्र , 2011, भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली** विश्वविदयालय पृष्ठ 305

शासकों द्वारा नामांकित व्यक्तियों की मौजूदगी तथा भारत के संभावित विभाजन की व्यवस्थाओ पर काँग्रेस को कड़ी आपति थी | अंततः और काँग्रेस नेताओ के बीच बातचीत बंद हो गयी | [29]

क्रिप्स मिशन के असफलता ने भारतीयो को निराश किया इसके बाद भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत हुई | गांधी जी ने 'करो या मरो ' का नारा दिया | उनका कहना था या तो हम भारत को आजाद कराएंगे या इस कोशिश मे अपनी जान दे देंगे | अपनी गुलामी का स्थायित्व देखने के लिए हम जिंदा नहीं रहेंगे | [30] यह आंदोलन व्यापक स्तर पर चला | इस आंदोलन ने ये साबित कर दिया कि भारतीयो को अब स्वराज्य से कम कुछ नहीं चाहिए | इस आंदोलन के द्वारा क्रमिक संवैधानिक सुधार कि मांग नहीं की गयी बल्कि पूर्ण स्वतन्त्रता कि मांग तेज हो गयी |

जब यह घटना क्रम चल रहा था तब ब्रिटिश सरकार द्वितीय विश्वयुद्ध मे उलझा था | भारत छोड़ो आंदोलन तथा विश्वयुद्ध एवं आजाद हिन्द फौज के गठन ने बातचीत करके सत्ता हस्तांतरण की योजना बनाने के लिए भारत आया | कैबिनेट मिशन ने आंशिक रूप से प्रांतीय विधानमंडलों द्वारा चुनाव और आंशिक रूप से देसी रियासतों के प्रतिनिधित्व से संविधान सभा बनाने की योजना तैयार की | प्रस्ताव किया गया कि गवर्नर जनरल द्वारा संविधान सभा बुलाई जाएगी और संविधान सभा द्वारा तैयार संविधान का प्रारूप ब्रिटिश संसद मे पारित करने के लिए वैसे ही पेश किया जाएगा ,जैसा ब्रिटेन के श्वेत उपनिवेशों ने किया है | [31]

प्रांतीय स्वायतता की चिकनी चुपड़ी बाते करने के बावजूद , कैबिनेट मिशन ने इस सिद्धांत को गंभीर नुकसान पहुंचाया | सांप्रदायिक आधार पर प्रांतो के समूह बनाने के प्रस्ताव और प्रांतो के एक खास समूह मे शामिल होने से इनकार करने के प्रांत के अधिकार को स्वीकार कर यह मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्र सिद्धांत पर चलने लगी और वह भी आपत्तिजनक तरीके से | [32] कैबिनेट मिशन ने सांप्रदायिक आधार पर अलग अलग प्रांतो का समूह बनाया जिसको हिन्दू बहुल और मुस्लिम बहुल क्षेत्रों मे बांटा गया | इसका बँटवारा उसी प्रकार से किया गया था जैसा की मुस्लिम लीग पाकिस्तान के बँटवारे के लिए चाहती थी | कॉग्रेस ने ऐसे बँटवारे का विरोध किया लेकिन मुस्लिम लीग इसमे कोई परिवर्तन नहीं करना चाहती थी |

देश मे तनाव का माहौल था उसी बीच मे काँग्रेस और मुस्लिम लीग क्षेत्रीय बँटवारे को लेकर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहे थी | तभी मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग को तेज करते हुए डायरेक्ट एक्शन का नारा दिया जिसमे पाकिस्तान की मांग के लिए कार्यवाही तेज कर दिया | इसी बीच नेहरू ने घोषणा किया कि काँग्रेस 1946 मे होने वाले सवींधान सभा के चुनाव मे भाग लेगी | मुस्लिम लीग भी इसमे भाग लेने के लिए पहले तैयार थी लेकिन बाद मे इसका विरोध किया तथा अपने लिए अलग प्रांत पाकिस्तान कि मांग को कायम रखा | ब्रिटिश संसद

---

[29] विपिन चन्द्र ,2011, भारत का स्वतन्त्रता संग्राम : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 43

[30] वही, पृष्ठ 441

[31] शिबानी शंकर चौबे, 2009, भारतीय सविंधान रचना एवं कार्य नयी दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया पृष्ठ 9

[32] वहीं पृष्ठ 9

द्वारा जुलाई , 1947 मे पारित इंडियन इंडिपेंडेंस एक्ट मे भारत और पाकिस्तान दो 'स्वतंत्र राज्यों' राज्यों का गठन किया | वास्तव मे, इंडियन इंडिपेंडेंस एक्ट का इरादा था कि भारत के संविधान प्रारूप , ब्रिटिश रानी समेत संसद के प्रतिनिधि के तौर पर भारत के गवर्नर जरनल के सामने प्रस्तुत करे | परंतु , भारत की संविधान सभा ने संविधान के प्रारूप को भी गवर्नर जरनल के सामने मंजूरी के लिए नहीं रखा | राष्ट्रपति द्वारा अधिकृत किए जाने के बाद भारत के संविधान की घोषणा कर दी गयी | भारत की संविधान सभा ने 9 दिसंबर , 1946 से 29 नवंबर ,1949 तक लगभग तीन साल कम किया | संविधान की घोषणा 26 जनवरी, 1950 को हुई | [33]

स्वतंत्र भारत का संविधान भारत की तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एक संतुलित प्रारूप था. संविधान सभा में हालाँकि हिन्दू उच्च वर्ग एवं मुख्यतः वकील बहुतायत में थे, लेकिन इसी संविधान सभा ने दलितों और अल्पसंख्यकों के लिए संविधान के द्वारा एक सम्मानजनक स्थान प्रदान किया. धर्म के आधार पर हुए विभाजन के कड़वे दौर में भी हिन्दुओं के बहुमत वाले संविधान सभा ने संविधान के अनुच्छेद 25 से लेकर अनुच्छेद 30 में धार्मिक अल्पसंख्यकों के हितों तथा उनके संस्कृति और परम्पराओं का न केवल उचित सरंक्षण सुनिश्चित किया बल्कि उनके प्रसार-प्रसार को भी उचित अवसर प्रदान किया. इसी का परिणाम है कि भारत में आज भी सभी धर्मों के लोग ख़ुशी पूर्वक अपनी-अपनी संस्कृति और परम्पराओं के साथ रह रहे हैं. संविधान सभी नागरिकों को बिना उनके जाति,नृजाती, धर्म, क्षेत्र, भाषा इत्यादि विविधिताओं के आधार पर असमानता किये हुए सबसे साथ सामान व्यवहार करता है**. (नारंग : 2008 )** भारत में शासन के सभी अंग [कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका] अपनी अलग-अलग भूमिका के बावजूद भी संवैधानिक रूप से एक दुसरे की शक्ति को नियमित करते हैं. भारत में न संसद की सर्वोच्यता है, और नही कार्यपालिका या न्यायपालिका की, बल्कि यहाँ संविधान की सर्वोच्यता है, जो सभी संस्थाओं के शक्ति का स्रोत है. विश्व में प्रचलित सभी संविधान दो सिद्धान्तों पर कार्य करते हैं- प्रथम, विधि की उचित प्रक्रिया और दूसरी, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया. विधि की उचित प्रक्रिया, अमेरिका जैसे कठोर संघीय सरंचना वाले देश में पाई जाती है, जहाँ न्यायपालिका विधायिका द्वारा बनाए गये किसी कानून का परीक्षण दो आधारों पर करती है कि बनाया गया कानून उसके अधिकार क्षेत्र में आता है या नही, और बनाया गया कानून उचित प्रक्रिया को पालन करते हुए बनाया गया हैं या नही, वही विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया में न्यायपालिका केवल विधायिका के कानून बनाने के अधिकारक्षेत्र को देख सकती है. भारत में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया अपनाई गयी है लेकिन व्यवहार में देखने पर पता चलता है कि न्यायपालिका ने यहाँ परिस्थितिवश दोनों सैद्धांतिक आधारों को ग्रहण कर लिया है. [34] यह न्यायालय द्वारा दिए गये विभिन्न निर्णयों के आलोक में देखा जा सकता है. भारत के संविधानिक प्रावधान शासक और शासित दोनों पर बिना किसी भेदभाव के सामान रूप से लागु होते हैं, और इसमें परिवर्तन की प्रक्रिया नीचे से शुरू होती है जो संविधानवाद का सार है.

[33] वही पृष्ठ 10

[34] Austin, Graniville. *The Indian constitution: cornerstone of a nation/Granville Austin*. New Delhi: Oxford University Press, 1966.

## निष्कर्ष

संविधानवाद एक क्रमिक प्रक्रिया है, जिसका विकास शनैः-शनैः होता है. लोकतंत्र में परिवर्तन क्रमशः और समावेशी तरीके से होता है. इसके विकास के लिए केवल संवैधानिक प्रावधान काफी नही है, बल्कि उन प्रावधानों के अनुरूप समाज में भी परिवर्तन वांछनीय हैं और इस दृष्टिकोण से भारतीय समाज शुरू से ही काफी प्रगतिशील रहा है. भारत मे संविधानवाद की संकल्पना का उद्भव ब्रिटिश उपनिवेशिक शासन के आगमन के साथ ही शुरू होता है | यह पूरी तरह से पश्चिमी संकल्पना पर आधारित था जिसका विकास मुख्य रूप से ब्रिटेन मे हुआ था | भारत मे विकास धीरे धीरे लंबे समय काल के साथ हुआ | ब्रिटिश उपनिवेशिक शासन ने समय समय पर भारत मे अपने शासन को मजबूत करने के लिए इसको क्रमिक रूप मे संवैधानिक सुधारों, प्रशासनिक योजनाओ द्वारा लागू किया |

इसके जवाब मे भारतीयो ने समय समय पर ब्रिटिश शासन के विरोध मे राष्ट्रीय आंदोलन चलाया | इन आंदोलनो के जरिये भारतीयो ने ब्रिटिश शासन पर अपने अधिकारो के लिए दबाव डाला जिसमे जिसमे उन्हों ने अपने प्रतिनिधित्व, उत्तरदायी शासन, डोमिनिओन स्टेट्स एवं अंत मे पूर्ण स्वराज की मांग की | इस तरह अपने लिए अधिकारो के द्वारा भारतीयो ने ब्रिटिश सरकार के शक्ति को सीमित किया जो संविधानवाद के अर्थ को चरितार्थ करता है | भारत मे जो उपनिवेशिक सरकार द्वारा संवैधानिक सुधार हुए वह स्वतन्त्रता के बाद भी भारतीय संविधान मे देखने को मिलता है | 1935 के भारत सरकार अधिनियम के बहुत से ऐसे प्रावधान है जो स्वतंत्र भारतीय सवींधान मे आधारभूत रूप मे मौजूद है इस प्रकार उपनिवेशिक संवैधानिक संकल्पना भारत मे जीवित है |. भारत का संविधान विधि के शासन पर आधारित है, और यह बात अनुच्छेद 14 में वर्णित विधि के समक्ष समानता और विधि का सामान सरंक्षण रूपी प्रावधानों में देखा जा सकता है. इन प्रावधानों के अनुसार कानून शासक और शासित दोनों के लिए सामान है और संविधान के किसी भी प्रावधान में परिवर्तन शासकों की इच्छा पर निर्भर नही होकर जनता की इच्छाओं और भावनाओं पर आधारित होता है और यही भावना संविधानवाद की पहली और आखिरी शर्त है.

## अभ्यास के लिए प्रश्न :

1 संविधानवाद से आप क्या समझते है ? भारत मे इसका विकास किस प्रकार हुआ | प्रकाश डालिए |

2 1861 के एक्ट के  संवैधानिक महत्व पर प्रकाश डालिए |

3 1909 का मार्ले मिंटो सुधार अधिनियम भारत की एकता को भंग करने का प्रयास था |  इस कथन की  व्याख्या कीजिए |

4 दोहरे शासन से आपका क्या अभिप्राय है ? 1919 के अधिनियम के अनुसार यह क्यो जारी किया गया ?

5 1935 के एक्ट मे दिये गए संघात्मक शासन की मुख्य विशेषताओ की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए |

## ग्रंथ एवं सन्दर्भ सूची :


Rajeev Bhargava , 2008, outline of a political theory of the Indian constitution ,in Rajeev Bhargava ed , *Ethics and politics of the Indian constituution* , New Delhi : oxford university press।

सुमित सरकार, 2007, आधुनिक भारत , नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन

शिबानी शंकर चौबे, 2009, भारतीय संविधान रचना एवं कार्य नयी दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया पृष्ठ 9

विपिन चन्द्र ,2011, भारत का स्वतन्त्रता संग्राम : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविधायलय, पृष्ठ 43

Shekhar Bandopadhyay,2004 , *From Plassey to partition: A History of modern India* ,New Delhi: Orient Longman pp .

ए आर देसाई, 2012 ,भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि ,नयी दिल्ली :मेकमिलन प्रेस

Austin, Graniville. *The Indian constitution: cornerstone of a nation/Granville Austin*. New Delhi: Oxford University Press, 1966.

Dicey, Albert Venn. *The Law of the Constitution*. Oxford University Press, 2013.